रुदन

श्री श्यामधारी प्रसाद



प्रकाशक

वाणी-मन्दिर, छपरा।

प्रकाशक
मंगल प्रसाद सिंह,
"वाणी-मन्दिर"
छपरा।

प्रथम संस्करण, १०००
मूल्य सजिल्द बारह आना
" अजिल्द आठ आना
जनवरी १९३८ ई०

मुद्रक
विद्यावती देवी,
वाणी-मन्दिर प्रेस,
छपरा।

विषय-सूची

भूमिका

एक ज़माना था, जब मैं भी कवि बनने की कोशिश करता था–शब्दों को छंदों के नाथ में नाथता था, उन्हें पत्रों में प्रकाशित कराने को भेजता था, कवि–सम्मेलनों में उन्हें सुनाता था। कवि कहलाऊं, काव्य चर्चा में ही अपना समय बिताऊं, यही इच्छा रहती थी। यही नहीं, कवियों की ऐसी भेष–भूषा भी रखने को चेष्टा करता था। किन्तु वे दिन नहीं रहे। किसी अज्ञात शक्ति ने जीवन की धारा ही दूसरी ओर बदल दी। आज अपनी उन उपहासोस्पद करतूतों पर लज्जा भी आती है।

फिर भी, इस कविता–पुस्तक की भूमिका लिखते हुए मैं कुछ आनन्द ही अनुभव कर रहा हूँ।

क्योंकि, यद्यपि यह बिहार की भूमि किसी ज़माने में अश्वघोष, बाण भट्ट, विद्यापति आदि कवि–चक्रवर्तियों को अपनी गोद में खेला चुकी है, किन्तु इस समय कालचक्र के कारण इसकी अवस्था बहुत ही गिरी हुई है। इधर कविता-गगन में इसने एक भी ऐसा ग्रह–उपग्रह प्रदान नहीं किया, जो अपनी ज्योति से साहित्य–जगत को जगमगा सके, जिसके चरणों में सब की श्रद्धांजलि समान रूप से अर्पित हो। किन्तु

सन्तोष की बात है कि इसके कुछ नक्षत्र अब टिमटिमाने लगे हैं। सम्भव है, इनमें से कुछ में सूर्य्य आदि से भी बढ़कर ज्योति निहित हो, किन्तु अभी तक उनकी प्रकाश-धारा साहित्य जगत में उस रूप में नहीं पहुंच सकी है। चाहे जो कुछ भी हो, अपने इस रूप में भी ये नयनाभिराम हैं, शीतलताप्रद हैं, अंधेरी रात में भटकने वाले पथिकों के सहारे हैं। हमारे लिये ये अभिनन्दनीय हैं—स्वागतम्।

विहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्राण मित्रवर बाबू रामधारी प्रसाद जी के अनुज श्री श्यामधारी प्रसाद जी-जिन्हें हम श्यामा जी के नाम से पुकारते हैं-विहार के नवयुवक कवियों में एक हैं। विहार के अन्धकार-पूर्ण साहित्य-गगन में चमकने वाले कुछेक नक्षत्रों में आपकी भी गणना की जाती है। मुझे वे दिन याद हैं, जब श्यामाजी अपने को छिपाये चलते थे, उनसे छीन २ कर मैं उनकी रचनायें पत्र-पत्रिकाओं में देता था। किन्तु अब ? आदमी अपने को कहां तक छिपाये रख सकता है।

इस पुस्तक में संग्रहीत कवितायें कैसी हैं, इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता। मेरी वर्तमान मनस्थिति इस योग्य नहीं है। हां, इतना कह सकता हूं कि 'रुदन' की प्रत्येक पंक्ति में श्यामा जी का काल्पनिक रुदन नहीं, वास्तविक रुदन छिपा है। एक उर्दू-कवि ने कहा है:—

न कुछ हंस हंस के सीखा है, न कुछ रो रो के सीखा है।
जो कुछ हमने सीखा है किसी का हो के सीखा है॥

श्यामा जी ठीक इसके विपरीत कह सकते हैं कि 'जो कुछ हमने सीखा है, वह रो रो कर ही सीखा है।' हमलोग इसके साक्षी हैं। अपनी इस रुदन-शील रचना का नाम 'रुदन' रख कर उन्होंने अपनी कवि-प्रतिभा ही दिखलाई है।

बेनीपुर — श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

आश्विन ६०



लेखनी से

अरी लेखनी ! अंकित कर
मेरे लघुजीवन–का इतिहास ।
कुछ भी छिपा न रख अबतक के
सुख दुख और हास परिहास ॥
पाठक सुख की कथा बांचकर
हर्षित होवे, पावें मोद ।
और हास परिहास पाठ..र,
होवे उनका मनोबिनोद ॥
पुनः दुःख की कथा सुनाकर
उन्हें बना दे तनिक अशान्त ।
आंसू की लड़ियां बिखरावे
करें आर्द्र अपना मुख कान्त ॥
अरी मूढ़ ! इन जग–जीवों को
हर्षित करना है आसान ।
किन्तु, सहानुभूति सूचक दो
आंसू पाना कठिन महान ॥
अतः संभल वाचक के उर में
मेरी करूण कथा भरदे
पा अमरत्व स्वयं, मुझको भी
अपने साथ अमर कर दे ॥

(२)

कौन ?

कौन श्रवण-पुट में आ मेरे
गा जाता है राग पुराना ?
मुझको अस्त व्यस्त करने हित
किसने जटिल जाल यह ताना ?
अपनी पीड़ाओं में उलझा
रहता यह दिन रात अभागा ।
किसके बज्र हृदय में अरे ।
भाव सताने का फिर जागा ?
क्या पावोगे उसे सता कर ?
जो है अपने दुख में वेसुध ।
जिसका जीवन भार सदृश है
जिसने खो डाली निज सुध बुध ॥
गत वैभव की याद ! सदय हो
छोड़ो मुझको ईश दया पर ।
गन्ध और मकरंद हीन हो
इस जगती पर जाने दो झड़ ॥



रुदन ।

रोता है सारा संसार ।
हे प्रभु ! क्यों इस निखिल विश्व में
मचा हुआ है हाहाकार ।
जिधर देखता नाथ ! उधरही पड़ती
दीख अश्रु की धार ॥
विकट विषाद घोर उत्पीड़न का है
आह ! गर्म बाजार ॥
क्या इस जग का यही धर्म है
क्या है सुख आशा बेकार ?
क्यों दुनिया में रुदन राज्य तुमने
फैलाया करुणागार ?
देव ! बहुत हो चुका, पलट दो अपना
वह प्राचीन विचार ।
जग को हंसने का अवसर दो बन कर
स्वयं हास्य-साकार ॥



विपंची से

विपंची ! रस में विष मत घोल ।
हृदय हीन जग सम्मुख अपने मन की
बात न खोल ॥
सुनकर तेरी व्यथा मूढ़ नर करते हैं
परिहास ।
कौन सांत्वना देगा तुमको ? है झूठी
यह आस ॥
छोड़ सभी ममता सुरलय की
छिन्न भिन्न करतार ।
व्यथित हृदय का मूक भाव से
करो व्यक्त उद्‌गार ॥

मनस्ताप

चू चू कर योंही झड़ जाते
मेरे मानस तरु के फूल ।
नहीं किसी को लुभा सके, ये
कर न सके अपने अनुकूल ॥
जिसने लखा उसीने हंसकर
दिया भूमि पर उनको डाल ।
पा प्रतिकूल परिस्थिति रोते
चले अकाल काल के गाल ॥
नहीं किसी ने परखा उनका
रूप रंग औ मादक गन्ध ।
यहां बाहरी चटक मटक पर
ही भूली है दुनिया अन्ध ॥



प्रवंचित पिक के प्रति

मेरे इस उजड़े कानन में
क्यों आयी कोयल चुप चाप?
किस छलिया ने तुम को भेजा
सहने को भीषण सन्ताप!
नियति शाप से टूटे फूटे
वृक्ष पड़े हैं चारों ओर ;
ललित लतायें श्रीहत होकर
भोग रही यातना कठोर ॥
पगली! किसने कहा कि इसमें
आवेंगे ऋतुराज वसन्त ।
और विपिन के वृक्षों के दुख
का होगा अब सत्वर अन्त?
व्यर्थ किसी ने छला तुम्हें है
ऐसी आशा है वेकार ।
यहां मिलेगी निशिदिन प्रतिपल
तुम्हें तप्त आंसू की धार ॥
देख दृश्य यह चीख उठोगी
होगा तुमको क्लेश महान ।
वह जावोगी तुम भी और
वहेगा तेरा कोमल गान ॥
भागो यहां न ठहरो और न
छेड़ो अपना पंचम तान ।
व्यर्थ प्रयास तुम्हारा होगा
आ न सकेगी शव में जान ॥

मनोव्यथा

१

दुख रजनी दूर न होती,
सुख दिवस समीप न आता।
आशा चक्की के नीचे,
मन मेरा पिसता जाता॥

२

प्रतिदिन नूतन आशा ले,
दिनकर किरणें हैं आतीं।
पर मेरी फूटी किस्मत,
हा! कभी नहीं हंस पाती॥

३

देखा रोने वाले को,
सुख करते और विहंसते।
वीहड़ नीरस धरती को,
नूतन क्रम से फिर बसते हैं॥

४

कितने उजड़े कानन को,
ऋतु पति ने हरा बनाया।
पर मेरे हृदय कुसुम को,
उसने न कभी विकसाया॥

५

मुझको विशुष्क करने हित,
ये ताप तप्त लू आतीं।
बरबस बेसुध पा मुझको,
मकरन्द बूंद ले जातीं॥

६

जीवन प्रद दिनकर किरणें,
कमलों को हैं विकसातीं।
पर इस निरीह को केवल,
कलपातीं और जलातीं॥

७

रजनी पति गगनाङ्गन में,
हैं थिरक अमृत बर्षाते।
मूर्दे में जीवन भर कर,
जीवन दाता कहलाते॥

८

पर मेरे हित उनका वह,
गुण कहां लुप्त हो जाता।
जो मेरे इस मृत मन में,
उल्लास नहीं उठ पाता॥

९

कोयल निज पंचम स्वर से,
सुखिया को मस्त बनाती ।
पगली सी चहक चहक कर,
पत्ते पर गिरती गाती ॥

१०

उसकी तानों से मस्ती,
सर्वत्र चुई चलती है ।
पर सुन उसको उर मेरे,
हा हन्त ! आग बलती है ॥

११

वर्षा ऋतु में बादल दल,
नभ में घिरते मंडराते ।
धरती पर तरज गरज कर,
जप की बूंदे बरसाते ॥

१२

तव नाच उठा करते हैं,
सुख की मदिरा पी बेसुध ।
मैं काँप उठा करता हूं,
खो देता हूँ निज सुध बुध ॥

१३

घनमें औ, राकापति में,
जब आँख मिचौनी होती ।
जिनकी क्रीड़ा लखने की,
इच्छा न आंख है खोती ॥

१४

वह परम मनोहर कौतुक,
मेरे जी को न जुड़ाता ।
म्थ कर कोने कोने को,
मुझ को है बिकल बनाता ॥

१५

पावस के कामो-द्दीपक,
लख कर वहु दृश्य मनोहर ।
दिल कसक उठा करता है,
युग आंखें होती हैं तर ॥

१६

जब नोरव शान्त निशा में,
घन अविरल जल वर्षाता ।
शय्या पर तड़प तड़प तब,
मैं रो रो रात बिताता ॥

१७

कितनी ऐसी रजनी को,
मैंने आंखों में काटी ।
निष्ठुर है आह ! कड़ी है,
विधना तेरी परिपाटी ॥

१८

तन झुलस गया है मेरा,
शोणित भी सूख गया है ।
क्या इस सूखी हड्डी पर,
विधि ! आती नहीं दया है ॥

१९

संध्या की स्वर्ण प्रभा-युत,
जब लाली तरु पर छाती ।
चिड़ियें जब फुदक फुदक कर,
निज निज नीड़ों में जातीं ॥

२०

मैं तड़प तड़प तब भू पर,
गिर कर उसांस भरता हूँ ।
अपनी फूटी किस्मत की,
फरियाद किया करता हूँ ॥

१३

घनमें औ, राकापति में,
जब आँख मिचौनी होती ।
जिनकी क्रीड़ा लखने की,
इच्छा न आंख है खोती ॥

१४

वह परम मनोहर कौतुक,
मेरे जी को न जुड़ाता ।
मथ कर कोने कोने को,
मुझ को है विकल बनाता ॥

१५

पावस के कामो-द्दीपक,
लख कर बहु दृश्य मनोहर ।
दिल कसक उठा करता है,
युग आंखें होती है तर ॥

१६

जब नीरव शान्त निशा में,
घन अविरल जल वर्षाता ।
शय्या पर तड़प तड़प तब,
मैं रो रो रात बिताता ॥

१७

कितनी [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]
निष्ठुर है हाय! [illegible]
[illegible]

१८

तन सुन्दर [illegible] है [illegible],
[illegible]
क्या इन [illegible] [illegible] [illegible],
विधि! [illegible]

१९

संध्या की [illegible],
जब [illegible]
चिड़ियाँ जब फुदक फुदक कर,
निज निज [illegible]

२०

मैं तड़प तड़प कर [illegible],
[illegible]
अपनी फूटी किस्मत [illegible],
फरियाद किया करता हूँ।

पागल प्राण ।

कहां भूले हो पागल प्राण !
दीखता नहीं तुम्हारा त्राण ॥
छाया सा तुम दौड़ रहे जिसके पीछे अनजान ।
वह तो भ्रम है, मृग तृष्णा है, माया मोह महान ॥
न उसमें तेरा कुछ कल्याण ।
कहां भूले हो-पागल-प्राण ॥
इस जग में अपना विचारना पर को भूल महान ।
बड़ा विकट है कृत्रिमता में अपने की पहिचान ॥
व्यर्थ मत कर निजको म्रियमाण ।
कहां भूले हो-पागल-प्राण ॥



कविते

कविते ! रूठो मेरे मन से ।

रस की धारा सूख गयी है, ऊब उठा जीवन से ॥

अन्तर तर है धू धू जलता, गिरते अश्रु नयन से ।

हुआ अभाव भाव का, कढ़ती आहें हृदय अयन से ॥

बिवश बना हूँ, कुछ भी आशा नहीं रही इस तन से ।

नहीं मिटेगी प्यास पपीहे ! तेरी सूखे घन से ॥



सुखद सवेरा

छोटा सा है हृदय नाथ,
सागर सा दुख लहराता ।
लख बिपरीत तुम्हें मेरा मन,
रह रह कर अकुलाता है ॥
अपने लघु जीवन में अब तक,
दुख ही दुख है पाया ।
रो रो कर तेरे चरणों को,
आंसू से नहलाया है ॥
क्या रोने के हित ही तुमने,
मुझ को नाथ बनाया ।
दया करो लख मेरी सूखी,
जर्जर सी यह काया ॥
दुख प्रहार अब सह न सकेगा,
दुर्बल है तन मेरा ।
होने दो अखिलेश ! दयाकर,
अब तो सुखद सवेरा ॥

फूल की चिन्ता

एक सुन्दर सघन वन की कुंज में ।
थे अनेकों पुष्प पाटल के खिले ॥
एक से थे एक बढ़कर रूप में ।
थे प्रकृत सौन्दर्य्य उन सब को मिले ॥

जब सभी संलग्न थे परिहास में ।
एक था उद्विग्न बैठा मौनसा ॥
देख उसको मौन बातें बन्द कर ।
पूछ बैठे सोच तुमको कौन सा ॥

रूप में गुण में किसी भी बात में ।
तुम किसी से ही किसी विधी कम नहीं ॥
फिर तुम्हारा सोच करना है वृथा ।
क्या सुधी भी सोच करते हैं कहीं ॥

सुन कथन उसका कहा उस फूल ने ।
ठीक है कहना तुम्हारा मित्रवर ॥
किन्तु, है विश्वास कारण ज्ञातकर ।
दुःख अनुभव तुम करोगे अधिकतर ॥

मानते हैं हम कि हमको रूप है ।
किन्तु उसका चाहने वाला कहां ॥
चाहने की बात ही बेकार है ।
देखने वाले नहीं हैं जब यहां ॥

भाग्य तो है मन्द इतना क्या कहें ।
देव चरणों पर नहीं चढ़ पायेंगे ॥
आपही अपने सलोने रूप को ।
देख मुरझा कर यहीं झड़जांयगे ॥

सुखद सवेरा

छोटा सा है हृदय नाथ,
सागर सा दुख लहराता ।
लख बिपरीत तुम्हें मेरा मन,
रह रह कर अकुलाता है ॥
अपने लघु जीवन में अब तक,
दुख ही दुख है पाया ।
रो रो कर तेरे चरणों को,
आंसू से नहलाया है ॥
क्या रोने के हित ही तुमने,
मुझ को नाथ बनाया ।
दया करो लख मेरी सूखी,
जर्जर सी यह काया ॥
दुख प्रहार अब सह न सकेगा,
दुर्बल है तन मेरा ।
होने दो अखिलेश ! दयाकर,
अब तो सुखद सवेरा ॥

फूल की चिन्ता

एक सुन्दर सघन वन की कुंज में ।
थे अनेकों पुष्प पाटल के खिले ॥
एक से थे एक बढ़कर रूप में ।
थे प्रकृत सौन्दर्य्य उन सब को मिले ॥
जब सभी संलग्न थे परिहास में ।
एक था उद्विग्न बैठा मौनसा ॥
देख उसको मौन बातें बन्द कर ।
पूछ बैठ सोच तुमको कौन सा ॥
रूप में गुण में किसी भी बात में ।
तुम किसी से ही किसी विधी कम नहीं ॥
फिर तुम्हारा सोच करना है वृथा ।
क्या सुधी भी सोच करते हैं कहीं ॥
सुन कथन उसका कहा उस फूल ने ।
ठीक है कहना तुम्हारा मित्रवर ॥
किन्तु, है विश्वास कारण ज्ञातकर ।
दुःख अनुभव तुम करोगे अधिकतर ॥
मानते हैं हम कि हमको रूप है ।
किन्तु उसका चाहने वाला कहां ॥
चाहने की बात ही बेकार है ।
देखने वाले नहीं हैं जब यहां ॥
भाग्य तो है मन्द इतना क्या कहें ।
देव चरणों पर नहीं चढ़ पायेंगे ॥
आपही अपने सलोने रूप को ।
देख मुरझा कर यहीं झड़जायगे ॥

व्यथा

अरे मन ! होता क्यों चंचल।
जिसको पुनः न देख सकेगा उसके हेतु विकल ॥
तुझ को लाख बार समझाया।
पर न उसे तुमने अपनाया॥
रह रह कर तुम कर देते सब आयोजन निष्फल ॥
वह तो तोड़ सभी जग माया।
क्या जाने किस ओर सिधाया॥
उसकी कर तुम याद निरंतर मथते क्यों ही तल ॥
जो हो सच्चा स्नेह तुम्हारा।
तो लो कहना मान हमारा॥
उसकी मूर्ति हृदय में रख कर कर पूजा-प्रतिपल ॥



॥ विलम्ब से ॥

रो रो कर जब इन आंखों ने।
सारी शक्ति गवां डाली ॥
रक्त माँस भी सूख गया जब
रही शेष हड्डी खाली ॥
घोर निराशा से लड़कर जब
आशा तरु का नाश हुआ।
सांसारिक कोमल बन्धन जब
मेरे हित यम पाश हुआ ॥
तब तुम हंस सम्वाद भेजते
आकर हृदय लगाऊंगा।
अरे छली! भरमा कर मुझको
अब कहते हो, आऊंगा ॥

हताश हृदय से

जीर्ण हमारी तरी और था
सिन्धु घोर घहराता।
रत समीर था प्रलय नृत्य में
कूल न कहीं दिखाता॥
पाल भेंट हो चुका पवन को
था पतवार सहारा।
वह भी खंड खंड होकर के
देकर दगा सिधारा॥
अब तो इस सर्वस्व हीन
नौका का तुम्हीं सहारा।
पर है विनत हमारी ओवर
करो न इसे किनारा॥
क्रूर तरंगों की ठोकर से
इसे चूर होने दो।
रही न अब कुछ आशा बाकी
अभिलाषा खोने दो॥



हंस दो

सुनता हूं उत्सुक कानों से

तुम करते उस पार विहार।

इधर अभागी आंखें मेरी

गूंथ रही मोती का हार॥

कहो तपस्या कब तक मेरी

पूरी होगी प्राणाधार।

कब तक दया-दृष्टि होगी

कब हंस दोगे तुम मुझे निहार॥

हंस दो जरा, हंसी पर तेरे

न्योछावर कर दूं संसार।

अपनी चिर आशा पूरी लख

पाऊं प्रियतम मोद अपार॥

बिछुड़े का मिलना

देखा है नीरव रजनी में
घन को अश्रु बहाते।
देखा है कीटों को हंस हंस
दीपक पर बलि जाते॥
देखा है सोने के घर का
मिट्टी में मिल जाते।
देखा है टूटी कुटिया में
रत्नों को इठलाते॥
किन्तु, एक मैं देख न पाया
बिछुड़े का मिल जाना।
शुष्क कली का विधि विधान से
पुनः कभी खिल जाना॥

मन से

कितनी क्षण भंगुर है देह ।
व्यर्थ लगाता नाता नेह ॥
जिसे आज लखता है हंसते गाते सुन्दर गान ।
वही ईश इच्छा से होता प्रातः अन्तर्ध्यान ॥
यह टिकने का केवल गेह ।
व्यर्थ लगाता नाता नेह ॥
अपना समझ लिपट माया में करता जिससे प्रेम ।
हृदय मसल कर तेरा समझे वह जाने में क्षेम ॥
नहीं अरे ! किंचित सन्देह ।
व्यर्थ लगाता नाता नेह ॥
आना जाना 'उसकी' इच्छा के है सतत अधीन ।
क्या जाने कब लेगा तुझसे तेरा प्यारा छीन ॥
सर पर है वियोग का मेह ।
व्यर्थ लगाता नाता मेह ।

कामना

तेरी छवि आंखों के सम्मुख रहे
तुम्हारी याद रहे।
बीती बात याद कर निशि दिन
नयनों से दो बूंद बहे।
करूं न ऐसा काम कभी जिससे
हो तेरा मस्तक नत।
जीवन की अन्तिम घड़ियां तक
रहें प्राण तुम में ही रत॥
बस क्या और चाहिये मुझ को
जगत में सुख है क्या अन्य।
अगर पूर्ण कर सका इसे तो
समझूंगा अपने को धन्य॥

कहो करोगे अब क्या श्याम ?

बालक था कुछ ख्याल नहीं था क्या सुख दुख कहलाता है।
धन किस को कहते हैं औ' नर कैसे उसको पाता है॥
सदा सुखी थो बन्धन हीन।
नहीं बिलपता था बन दीन॥
अकस्मात् शैशव ने जब निज सारा साज समेट लिया।
यौवन ने सज्जित होकर फिर मुझ पर धावा बोल दिया॥
रहा न भोलेपन का नाम।
पड़ा दुसह झंझट से काम॥
तब जाना इस अगम सिन्धु में जीवन नाव चलाना है।
अपने ही हाथों के बल से खेकर पार लगाना है॥
एक रहेगी केवल साथ।
जिसका हूँ मैं जीवन नाथ॥
उसको लखकर मेरे मन में साहस का संचार हुआ।
नौका का अतिक्षुद्र भवन ही मेरा स्वर्गागार हुआ॥
बढ़े हाथ में ले पतवार।
लक्ष्य वही—जाना उस पार॥
एक दूसरे को लखते थे गाते तथा बजाते थे।
हिल मिल कर बातें करते थे अधिकाधिक सुख पाते थे॥
न थी हृदय—में धन की चाह।
था मैं मस्त न थी परवाह॥

ज्यों ही मध्य उदधि में पहुंचे त्योंही घिर आया बादल।
आंधी चलने लगी जोर से लगा उछलने वारिधि जल॥
बैठा हृदय करों से थाम।
देख दैव की यह गति वाम॥
तट था दूर वायु प्रतिकूल दिग का ज्ञान न होता था।
निरख :नीर नौका में आते हृदय धीरता खोता था॥
हुए दंपती संज्ञा हीन ।
नौका हुई उदधि में लीन॥
कब तक रहा अचेत दशा में इसका है कुछ ज्ञान नहीं।
होश हुआ एकाकी था मैं, जन्म संगिनी थी न कहीं॥
विहंस रहे थे रजनी कान्त।
व्याकुल प्रकृति हुई अब शान्त॥
ढूंढ़ा बहुत नहीं पर पाया थका नयन से नीर बहा।
ताना के शब्दों में विधु ने हंसकर मानो यही कहा॥
"गयी तुम्हारी वह छविधाम।
कहो करोगे अब क्या श्याम॥"

निमन्त्रण

मां ! मेरे उजड़े कानन पर
एक वार करुणा कर दे !
वहुत दिनों तक झुलस चुका है
इसमें अब शोभा भर दे ॥
कह दे निज अनुचर वसन्त से
तरु गुल्मों को विकसावे।
कोयल को आज्ञा दे दे वह
नाच मधुर गायन गावे ॥

एक वार सब भांति सजाकर
इसे बना मां ! सुन्दरतम।
अक्षय यौवन देकर इसको
करदे भूतल में अनुपम ॥
इस प्रकार पूरा हो जावे
जब इसका सुन्दर श्रृंगार।
एकबार हां एकवार तब जननि!
दया कर यहां पधार।

अनुरोध

बहुत दिनों तक रुला चुके हो—
नाथ ! जरा हंस लेने दो।
अपनी जीर्ण कुटी में सुख से
कुछ दिन भी बस लेने दो॥
सच है इस कुटिया में पहला
सौरभ का उन्माद नहीं।
यह भी सच है प्राप्त न हो
सकता पहला उल्लास कहीं॥
फिर भी जो कुछ बचा हुआ है
उस में ही सुख पाने दो।
ज्ञानी माया कहते जिसको
उस में ही लपटाने दो॥

गायक के प्रति

गायक ! तेरा गान श्रवण कर
मस्त बना जाता है मन।
सुध बुध तक है भूली जाती
विवश बना जाता है तन॥

तेरी स्वर लहरी से मिल कर
जो जादू है नाच रहा।
वह उन्मत्त बनाकर जग को
कर देगा अन्धेर महा॥

गायक! इतनी कोमलता किसने
भरदी तेरे स्वर में।
कैसे इतनी मादकता पैठी
इस कान्त कलेवर में॥

मैं ही क्या दुनिया विमुग्ध हो
पत्थर की है मूर्ति बनी।
जग की नीरसता में अनुपम
मादकता है आज सनी॥

गायक ! बना रहे स्वर तेरा
बहती रहे सदा रस धार।
मेरे व्यथित हृदय का कुछ कुछ
होता है उससे मनुहार॥

चीख

आज हृदय की छिपी वेदना
चीख उठी कर हाहाकार ।
दीन दृगों की एक मात्र निधि
ढलक पड़ी होकर बेजार ॥
रोम रोम है अश्रु बहाता
झुलसा जाता सारा गात ।
अरी याद ! अब सह्य न होता
तेरा भीषण तर आघात ।
क्षमा क्षमा निज दीन दशा पर
चाह रहा तुझ से कङ्गाल ।
अरी ! बचा है शेष यही तो
सूखी हड्डी का कङ्काल ॥



याद

हृदय के कोने में है छिपी ।

न जाने किसकी मधुमय याद ॥

कभी तो मथ जाती है हृदय ।

कभी जाती है दुख गिरि लाद ॥

कभी मन कर जाती है मुदित ।

सुनाकर मधुर प्रेम का गान ॥

कभी कर जाती है वेहोश ।

सुनाकर दुख की तीखी तान ॥

अजब कुछ बना दिया है मुझे ।

किया वन्दी सा मेरा हाल ॥

नहीं दिखलायी पड़ती मुक्ति ।

न काट सकते ये दृढ़तर जाल ॥

वादक के प्रति

सहसा आज विकल वीणा के
झंकृत हुए पुराने तार।
पता नहीं किसकी अंगुली की
पड़ी अचानक इस पर मार॥
थर थर कांप रही स्वर लहरी
निकल रहे करुणा के गान।
कौन हृदयवाला इसको सुन
रह सकता है धीरजवान।
वादक! बन्द करो अब रोको
जल्दी अपना चलता हाथ।
अरे! यहीं तो बह जायेगी
दुनिया स्वर लहरी के साथ॥

काल रात्रि

न भूली जाती तेरी घात।
अहा! उस दिन की आधी रात॥
खेल कूद में व्यस्त मस्त मैं बिता रहा था काल।
फंसा उधर अवलोक काल ने बिछा दिया था जाल॥
अचानक शिर पर वज्र निपात।
अहा! उस दिन की आधी रात॥
क्षुद्र खाट पर लेटी वह थी कोने में था दीप।
हृदय करों से थामे मैं जा बैठा तुरत समीप॥
दशा लख हुआ अश्रु कण पात।
अहा! उस दिन की आंधी रात॥
मुझको सम्मुख देख मुदित हो परम प्रेम के साथ।
मन्द किन्तु अति मधुर स्वरों में कहा बिदा दो नाथ॥
न आगे कही और कुछ बात।
अहा! उस दिन की आधी रात॥

उनसे

स्वप्न राज्य में तेरी छवि आंखों
के सम्मुख आती है।
सच कहता हूँ जले हृदय की व्यथा
न्यून कर पाती है॥
हो आनन्द विभोर जभी मैं बाहें
निज फैलाता हूं।
तभी निगोड़ी नींद उचटती कहीं
नहीं कुछ पाता हूँ॥
है क्या कारण प्रिये! बतावो जो
सपने में आती हो।
रहता हूँ जब जगा नहीं तब क्यों
सूरत दिखलाती हो॥
हो अभीष्ट याद तुम्हें वही तो
मोहन से है विनय यही।
कृपया ऐसा करो कि जिससे
खुलने पावे नींद नहीं॥

हृदय धन से

देव ! तुम्हारे दर्शनके हित यह
परिश्रान्त पथिक आया ।
बहुत दिनों का भूला भटका
आज पता तेरा पाया ॥
इन दुखिया आंखों की आशा
अभिलाषा परिपूर्ण करो ।
गुण अवगुण को भूल देव !
मेरे भावों पर ध्यान धरो ॥
एक वार निज रूप दिखाकर
मेरी आंखें देना फोड़ ।
जिन से निरखूं तुम्हें उन्हें
लखने को अन्य न देना छोड़ ॥



यात्रा

अर्द्धरात्रि की नीरवता में जब
फैली थी अंधियारी।
द्विविधा औ' ममता को तज तब
की चलने की तैयारी॥
किस पथ से जाना है मुझको
इसकी अवगति थी न मुझे।
घोर तिमिर में आंख फाड़ कर
खोज रहे थे प्राण तुझे॥
भगवन्! भटक रहा कब से
तोभी पाता पता नहीं।
छिपे कहां हो अपने आकर्षण
से खींचो मुझे वहीं॥
हू हू करके वायु निरंतर कहती
है उस पार चलो।
जीवन नैया खेल मुदित मन
पास न कुछ तुम संबल लो॥
इधर जलधि की ऊच्च तरंगे
देती है उठ उठ के त्रास।
हाथ बढ़ावो मुझे खींच लो
या होने दो मेरा नाश॥

आंसू से

अरे मेरे आंसू अनमोल !
ढलकर अपनी व्यथा न खोल ॥
अश्रु बहाये जनक नन्दनी ने पड़ रावण हाथ ।
मिली स्वर्ण लङ्का मिट्टी में हुए क्रुद्ध रघुनाथ ॥
ठहर मत दीन सदृश तू डोल ।
अरे मेरे आंसू अनमोल ॥
पुनः बहाये भरी सभा में सौरन्ध्री ने नीर ।
कौरव दल के चुने चुनाये नष्ट हुए सब वीर ॥
चढ़े पाण्डव के लोचन लोल ।
अरे मेरे आंसू अनमोल ॥
कलियुग में हो दुखी बहायी गायों ने जलधार ।
डूबा राज्य और निज कुल सह बाबर वंश अपार ।
न औरों के मग में विष घोल ।
अरे मेरे आँसू अनमोल ॥
तुम्हें कहो किसका करना है सचमुच सत्यानाश ।
जो तुम आज छलकर भू पर देते जगको त्रास ॥
न कर कम्पित भूगोल खगोल ।
अरे मेरे आंसू अनमोल ॥

निर्माता से

निर्माता ! रचते हो निशिदिन
मिट्टी के पुतली पुतले ।
और स्वयं सब भांति सजाकर
कर देते हो उन्हें भले ॥
क्या जाने क्या करके उनमें
जान डाल तुम देते हो ।
इस बीहड़ दुनिया में उनको
छोड़ नहीं सुध लेते हो ॥
कुछ दिन बाद लगा कर जोड़ी
उनका ब्याह कराते हो ।
उन्हें निरख कर सुखी कहो
सचमुच क्या तुम सुख पाते हो ॥
जब तेरा पुतला अपने को
उस पर न्योछावर करता ।
अपना चिर संचित सनेह
उसके चरणों पर है धरता ॥
तब पुतली की कल बिगाड़
उसको निर्जीव बनाते हो ।
इसे जला कर भस्म करो
आज्ञा दे यह मुस्काते हो ॥
हे विधि ! है आदेश तुम्हारा
सचमुच ही में बहुत कड़ा ।
उसे पालन में पुतले को
होता है सन्ताप बड़ा ॥

............से

तुम्हें मैं क्या दूंगा उपहार ।

जो कुछ था दे चूका रिक्त है मेरा स्नेहागार ॥

सुख समाधि ले चुका व्यथा है बनी जीवनाधार ।

खोजे कुछ भी नहीं मिलेगा छोड़ अश्रु का तार ॥

करते करते युद्ध भाग्य से थका हुआ बेकार ।

री ! कर इसका संग न पावोगी तुम कुछ भी प्यार ॥





असमर्थता

बहुत आगे बढ़ आया नाथ ।
जीवन भर की अमिट कमाई पाप पुंज है साथ ॥
देख रहा हूं अन्त निकट है किन्तु वही है ढङ्ग ।
त्याज्य समझता उसे किन्तु फिर भी न छूटता संग ॥
इतनी दूर पहुंच कर वापिस होने में असमर्थ ।
तेरा दास बनो है हे हरि ! अब कहना है व्यर्थ ॥
उसी धार में कहने दो प्रभु ! भरने दो अघकोष ।
तेरी दया न मुझे चाहिये रहे तुम्हारा रोष ॥

गोरख धन्धा

नाथ देख कर इस जगती का
गोरख धन्धा हूँ हैरान ।
पग पग पर है जाल बिछा
आता न दृष्टि में धर्म्म महान ॥
झूठे आडम्बर में दुनिया
व्याकुल है होकर परिभ्रान्त ।
छूत-भूत चूल्हे-चौके में
धर्म पड़ा है होकर भ्रान्त ॥
धर्मध्वजी जनने तुझको है
कर छोड़ा पर्दे में बन्द ।
ऊंच नीच का भेद खड़ा कर
विचर रहे अपने स्वच्छन्द ॥
बहुत दिनों तक मची धांधली
अब करदो तुम इसका अन्त ।
जड़-चेतन में ऊंच नीच में
दिखलाओ निज रूप अनन्त ॥

मातृ–ममता

जिसको वचपन ही में माता
छोड़ सिधारी नन्दन वन को ।
सच्चा सुख न प्रदान कर सका
कोई उसके कोमल मन को ॥
पग पग पर लाँछित होना ही
उसकी अमिट भाग्य रेखा है ।
ऐसे शिशु को कभी पनपते
किसने कहो कहां देखा है ?
बच्चों की मा छीन दयामय !
तुम करते अन्याय सरासर ।
मातृहीन बच्चे का जीवन
हो जाता है मृतक वरावर ॥
औरों को मा कहते सुन जब
वह निज मा हित व्याकुल होता ।
कौन हृदय वाला तव उसको
लख कर आह ! न धीरज खोता ॥

उपालंभ

भ्रमर वृन्द ! कहो किस हेतु यों ।
तुम भला इतना इठला रहे ॥
जब न है तुम में स्थिरता अहो ।
तब भला बुध क्यों न तुम्हें हंसे ॥
न रहते मिल के तुम एक से ।
सुमन को ठगते फिरते सदा ॥
निज मनोहर शब्द सुना सुना ।
तुम सदा उसका रस लूटते ॥
रस विहीन हुआ लख एक को ।
तुम उसी क्षण हो तजते उसे ॥
फिर फंसा कर अन्य गरीब को ।
कुटिलता अपनी दिखला रहे ॥
कर प्रयत्न जमा मधु जो किया ।
न तुम लाभ उठा उससे सके ॥
मनुज लेकर के तुमसे उसे ।
समुद पान करें मदमस्त हो ॥
मधुप ! है तुमसे बिनती यही ।
कर कृपा अब बंचकता तजो ॥
न जिससे तुम लांछित हो तथा ।
अब न और घिसे कवि लेखनी ॥

मातृ-ममता

जिसको बचपन ही में माता
छोड़ सिधारी नन्दन बन को ।
सच्चा सुख न प्रदान कर सका
कोई उसके कोमल मन को ॥
पग पग पर लाँछित होना ही
उसकी अमिट भाग्य रेखा है ।
ऐसे शिशु को कभी पनपते
किसने कहो कहां देखा है ?
बच्चों की मा छीन दयामय !
तुम करते अन्याय सरासर ।
मातृहीन बच्चे का जीवन
हो जाता है मृतक बराबर ॥
औरों को मा कहते सुन जब
वह निज मा हित व्याकुल होता ।
कौन हृदय वाला तब उसको
लख कर आह ! न धीरज खोता ॥

उपालंभ

भ्रमर वृन्द ! कहो किस हेतु यों ।
तुम भला इतना इठला रहे ॥
जब न है तुम में स्थिरता अहो ।
तब भला बुध क्यों न तुम्हें हंसे ॥
न रहते मिल के तुम एक से ।
सुमन को ठगते फिरते सदा ॥
निज मनोहर शब्द सुना सुना ।
तुम सदा उसका रस लूटते ॥
रस विहीन हुआ लख एक को ।
तुम उसी क्षण हो तजते उसे ॥
फिर फंसा कर अन्य गरीब को ।
कुटिलता अपनी दिखला रहे ॥
कर प्रयत्न जमा मधु जो किया ।
न तुम लाभ उठा उससे सके ॥
मनुज लेकर के तुमसे उसे ।
समुद पान करें मदमस्त हो ॥
मधुप ! है तुमसे बिनती यही ।
कर कृपा अब बंचकता तजो ॥
न जिससे तुम लांछित हो तथा ।
अब न और घिसे कवि लेखनी

आप से

जिसकी आशा कभी न पूरी
जिसे न हुआ कभी सन्तोष।
बीच विपद के पला निरंतर
जिस पर रहा तुम्हारा रोष॥
प्रबल परिस्थिति में पड़ जिसने
अब तक किये अनेकों पाप।
उस दयनीय जीवपर प्रभुवर!
कभी सदय होंगे क्या आप॥

भिखारी की उपेक्षा

मेरे देव तुम्हारी पूजा
की मैंने जी खोल ।
सदा रिझाता रहा तुम्हें मैं
मीठी बोली बोल ॥
जो कुछ इङ्गित किया उसे ला
रखा तुम्हारे पास ।
तेरे लिये अदेय न समझा
कुछ भी करुणावास ॥
सदा नाचता रहा इशारे
पर तेरा यह दास ।
क्या तुम समझ सके हो कितना,
दुख है मेरे पास ॥
आज चित्रकी व्याकुलताको
सका न मैं प्रिय ! रोक ।
और तुम्हारे निकट पहुंच
चाहा मैं मेटूं शोक ॥
तुम से चाही भीख किन्तु
तुमने साधा है मौन ।
तुम्हे बताओ मेरे प्रिय !
है मेरी गति अब कौन ॥

तब और अब

स्वच्छ था निर्द्वन्द्व था
मुझ में न कोई दोष था।
जिस परिस्थिति में पला
उसमें मुझे सन्तोष था॥
भाग्य का था दोष
उसपर दृष्टि मेरी पड़ गयी।
शान्ति की हत्या हुई
बेकार आंखें लड़ गयीं॥
उस दिवस से ही सभी
सुख चैन मेरा खो गया।
क्या कहूं सर्वस्व खोकर
आज नङ्गा हो गया॥



संचालक से

किस अबोध की हत्या मुझसे
करवाने पर हो तैयार।
किस अभागिनी की गोदी को
करने का है रिक्त विचार॥
सच कहता हूँ इस कर ने
जिसके सरमें सिन्दूर दिया।
उस अतृप्त अधखिली कली ने
उस दुनिया का मार्ग लिया॥
भगवन्! योंही मुझे छोड़ दो
बहने दो आंसू की धार।
उसके प्रखर प्रवाह वेग से
मिटता दुख होता मनुहार॥
जीवन के अवशिष्ट दिवस को
रोकर अरे! बिताने दो।
मेरे उजड़े हुए बाग में
कभी बसन्त न आने दो॥



मेरी मैना।

सुना कर अपनी मीठी बोल।
उड़ी मेरी मैना अनमोल ॥
अरी ! तुम्हारे लिये हृदय रोता है सब का-आह !
प्रतिपल दुखिया आँखों को है बस तेरी ही चाह ॥
मुंदी अपनी आंखें तू खोल।
दया कर एकबार फिर बोल॥
क्योंकर चली तोड़ सब माया धीरे से चुपचाप।
क्योंकर हमें रुलाकर तूने दिया दुसह संताप ॥
चली तू रसमें विष को घोल।
अरी ! मेरी मैना तू बोल ॥
तेरा चलना और विहंसना तेरा मधुमय खेल।
पड़ कर याद रुला जाता है दे जाता है शेल॥
अरी ! आकर नज़रों में डोल।
भली मेरी मैना तू बोल ॥
तेरे विना शून्य है आंगन घर है बना मसान।
चली गयी तू किन्तु तुम्हारा बना हुआ है ध्यान॥
हटा पर्दा आंखों में डोल।
सुना तू अपनी मीठी बोल ॥

भाव के प्रति ।

इस नगण्य के उर में क्यों तुम
उठते हो हे सुन्दर भाव ।
मेरे सड़े गले कागज में
होता तेरा नष्ट प्रभाव ॥
नामी नर के उर में यदि तुम
उठते तो करते कुछ काम ।
तभी जौहरी की आंखों में
लग सकता कुछ तेरा दाम ॥
अपने ऊपर करुणा करके
छोड़ो मेरे उर का वास ।
अरे भाव नाहक होता है
मेरे द्वारा तव उपहास ॥

पपीहे के प्रति

अरी पपीहे ! "पी पी" करने में
क्या मिलता है आनन्द ।
प्रियतम तेरा कहां छिपा है
किस पिंजड़े में है वह बन्द ॥

क्या वह सुनता नहीं तुम्हारी
कोमल करुणा भरी पुकार ।
किम्वा वह भी चला गया है
दैवयोग से दुनिया पार ॥

प्रोषित पतिका के उर में है
तेरी हूक लगाती आग ।
करती दग्ध सदा विधवा को
जिनका लूटा गया सुहाग ॥

अरी ! तुम्हारी वोली में है
छिपी हुई दुनिया की आह ।
लेखक क्या कह सकता उसमें
कितना दुख है कितनी दाह ॥

मेरी थाती

क्या उठता है भाव हृदय में
    क्या मैं लिखता जाता हूँ ।
        अपने इस चंचल मन का मैं
            अन्त न कहीं पाता हूँ ॥
कभी विचरता नन्दन वन में
    कभी नरक में जाता है ।
        कभी रुदन ही बस करता है
            कभी गाना ही गाता है ॥
कभी विहंग सा नभ में उड़ता
    कभी अतल जल में जाता ।
        इधर उधर यों ही इस जग में
            मुझे सदा है भरमाता ॥
इस मन से तुम के बदले प्रभु !
    मैंने तुम ही तुम पाया ॥
        अतः हार कर मेरी थाती
            तुम्हें सौंपते हैं हम !

रानी

जब तक तुम रहती हो जागृत
मेरे मन मन्दिर की रानी।
तब तक बैठ पढ़ा करता हूँ
तुझे जान कर सुखद कहानी

रूप सुधा जितना पी सकता
उतना हूँ मैं पीता जाता।
फिर भी पता नहीं क्यों मेरे
प्राण न उससे तनिक अघाता

जब तुम सो जाती हो रानी
मधुर कल्पना दौड़ लगाती।
सड़े गले कागज पर मेरे
तात नहीं क्या लिखती जाती।

मनोयोग पूर्वक जब लखता
कैसी मैंने लिखी कहानी।
होता है आश्चर्य्य बड़ा ही
देख भाव और बात पुरानी॥

तेरे रूप गुणों का वर्णन
पंक्ति पंक्ति में मैं हूं पाता।
तुझे छोड़ कर सचमुच जानो
यह अबोध मन कहीं न जाता॥

शिकारी से ।

हृदय में संचित था जो स्नेह
उसे मैं चढ़ा चुका हूँ भेंट ।
फंसाते हो क्यों मुझको व्यर्थ
शिकारी अपना जाल समेट ॥
तुम्हारे ये अनुपम सौन्दर्य
लुभा सकते हैं मुझको नहीं ।
बसी इन आंखों में है और
न रह सकती तुम इसमें कहीं ॥
तुम्हारे ये कोमल तर भाव
बड़े मादक हैं अरी अजान !
किन्तु, मैं भी हूँ परवश सुनो
न लगते भले प्रेम के गान ॥
अरी ! इन आँखों सम्मुख सदा
नाचता रहता जिसका रूप ।
वही लगता है मुझको भला
न जंचता कोई-रूप अनूप ॥

तुम्हारी याद ।

श्याम-जलद की गोदी में लख
चपला का मृदु मुसकाना ।
उसे निरख मोरों के दल का
नाच नाच हिय सरसाना ॥
कभी चन्द्र का जलद-जाल के
बाहर आना छिप जाना ।
मुक्त बदन लख-निज प्राणेश्वर
का चकोर का सुख पाना ॥
कभी तीव्र और कभी मन्द
गति से घन का जल वर्षाना ।
भीम वज्र का गर्जन सुन
नारी का पति से लिपटाना ॥
ये सब उद्दीपन सामग्री
किसका चित्र नहीं हरती ।
किसकी छाती नहीं जुड़ाती
किसको मस्त नहीं करती ॥

किन्तु अभागा मुझसा जिसने
निज सर्वस्व-गंवाया है ।
प्यारी ! दुख-को-छोड़ जगत में
क्या उसने सुख पाया है ॥
इन शोभा के साजों को लख
सुध बुध भूली जाती है ।
हृदय विकल हो-रो-देता है
याद तुम्हारी आती है ॥

श्रोता की खोज ।

किसे सुनाऊं कौन सुनेगा
मेरी दुखद कहानी ।
सब अपने सुखमें वेसुध हैं
दुनिया है दीवानी ॥
रे मन ! क्यों तू चाह रहा है
दिल का दर्द सुनाना ।
मन हल्का होगा, पर ऐसा
दिल है दुर्लभ पाना ॥
व्यथित हृदय ही सिसक उठेगा
सुन कर व्यथा कहानी ।
उसके दृगसे निकलेगी
करुणा बन कर पानी ॥
उठ चल ढूंढू हाट-बाट में
जंगल और बिराना ।
अगर मिला तो तड़प २ कर
उसको भी तड़पाना ॥

दानी का अन्वेषण

१

कर लिये पात्र भिन्न का
मैं फिरता मारा मारा।
दानी के अन्वेषण में
मैं भटक भटक कर हारा॥

२

मेरी खाली प्याली को
भरदे ओ! भरने वाले।
अपने करुणा के घन को
तुक मुझ पर भी वर्षा ले॥

३

मेरी प्याली को बाबा
धन रत्नोंसे मत भरना।
खारा जल नेत्र उदधि के
दो बून्द समर्पित करना॥

४

उसको पाकर ही सचमुच
धन रत्न राशि पा लूंगा।
अपनी चिर असफलता को
हंस हंसकर विसरा दूंगा॥

विश्राम की प्रार्थना

न जाने क्यों यह मेरा चित्त
दौड़ पड़ता है उसकी ओर ।
न देखा जिसका मुखड़ा कभी
वही बन बैठा है चित चोर ॥

आह रे ! मेरे पागल प्राण
बहुत कर चुके मुझे हैरान ।
कहां ले जावोगे कुछ कहो
कहां है यात्रा का अवसान ॥

न आगे चलने की है शक्ति
पांव थक गये हुए बेकाम ।
हृदय बैठा जाता है आह !
मुझे करने दो अब बिश्राम ।

परिशिष्ट

दिनकर

सोने के रथ पर सवार हो
प्रतिदिन प्रातः आते हो।
नभ को जग को पूर्व दिशा को
हंस कर लाल बनाते हो॥

तेरे आते ही त्रिलोक के
तिमिर तिरोहित होते हैं।
पंकज खिलते, खग हंसते,
जग-जीव नींदको खोते हैं॥

जगती तल में नयी जान
औ' जोश नया दिखलाता है।
तुझे निरख चकई के उर में
महा मोद छा जाता है॥

दिनकर! एक बात बतलादो
यदि थोड़ा भी हो अवकाश।
मेरे मन मन्दिर में कब फिर
होगा प्रियवर! पूर्व प्रकाश॥



राष्ट्र-पति

राष्ट्र-पति ! देखा तेरा रूप ।
मोहक आकर्षक थोड़े में सुन्दर अजब अनूप ॥
जीवन सफल हुआ आंखों ने पाया परमानन्द ।
आशा हुई बनेगी निश्चय भारत मां स्वच्छन्द ॥
देखी मुट्ठी भर हड्डी में प्रलय कारिणी आग ।
सुना सुकोमल मुख से जी भर महा क्रान्ति का राग ॥
इस टूटी नैया के सुन्दर नाविक चतुर सुजान ।
रखें तुम्हें सानन्द ईश दुखिया के हे भगवान् ॥

दिनकर

सोने के रथ पर सवार हो
प्रतिदिन प्रातः आते हो ।
नभ को जग को पूर्व दिशा को
हंस कर लाल बनाते हो ॥

तेरे आते ही त्रिलोक के
तिमिर तिरोहित होते हैं ।
पंकज खिलते, खग हंसते,
जग-जीव नींदको खोते हैं ॥

जगती तल में नयी जान
औ' जोश नया दिखलाता है ।
तुझे निरख चकई के उर में
महा मोद छा जाता है ॥

दिनकर ! एक बात बतलादो
यदि थोड़ा भी हो अवकाश ।
मेरे मन मन्दिर में कब फिर
होगा प्रियवर ! पूर्व प्रकाश ॥



राष्ट्र-पति

राष्ट्र-पति ! देखा तेरा रूप ।
मोहक आकर्षक थोड़े में सुन्दर अजब अनूप ॥
जीवन सफल हुआ आंखों ने पाया परमानन्द ।
आशा हुई बनेगी निश्चय भारत मां स्वच्छन्द ॥
देखी मुट्ठी भर हड्डी में प्रलय कारिणी आग ।
सुना सुकोमल मुख से जी भर महा क्रान्ति का राग॥
इस टूटी नैया के सुन्दर नाविक चतुर सुजान ।
रखें तुम्हें सानन्द ईश दुखिया के हे भगवान् ॥

मां की पुकार

अब क्या सोच रहा मन मेरा ।

निर्भय बन कर समरांगण में डालो अपना डेरा ॥

घर का झंझट झूठ बहाना ।

तुम से क्या है होना जाना ॥

दीन भाव से देख रही है दुखिया मां मुख तेरा ॥

चलो बांध निज संबल सारा ।

आलस है अतिशय हत्यारा ॥

जीवन भर के लिये बना है यह दुख द्वन्द घनेरा ॥



मेरी माला ।

भाव-पुष्प को गूंथ गूंथ-कर
मैंने हार बनाया ।
साभिमान उसको लेकर
'मन्दिर में जाना भाया ॥
मिले मित्र-जितने पथ में
उन सब को-उसे दिखाया ।
सब ने उसको अत्युत्तम
हां अत्युत्तम बतलाया ॥
धीरे धीरे मैं मन्दिर में
जा पहुंचा-इठलाता ।
बोला देख पुजारी मुझको
अरे ! कहां -है आता ॥
मैंने कहा देव ! पूजा हित
लाया हूँ मैं माला ।
इसे पिन्हाऊंगा मैं उसको
जो है बंशी वाला ॥
उनने कहा अबूझ कभी
साहस मत ऐसा करना ।
गन्धहीन माला से उसकी
सुन्दरता मत हरना ॥

हृदय स्तल में ढूंढ़

जग में फैला देखा मैंने नश्वरता का राज्य ।
अतः निराश हुआ मैं उससे समझा उसको त्याज्य ॥
चला जङ्गल में पाने शान्ति ।
जहां सुनता था मिटती भ्रान्ति ॥
मिले मार्ग में तपसी बाबा दिया उन्होंने ज्ञान ।
बेटा वन में बैठ प्रेम से, जपो नाम भगवान् ॥
करोगे इसी रीति से प्राप्त ।
नाम है जिनका जगमें व्याप्त ॥
मैंने कहा बतावें मुझको वह सुन्दर वन भाग ।
जिसमें आ आरम्भ करूं मैं गुरुवर अपना याग ॥
सफल हो जिससे मेरा काम ।
प्राप्त हो मेरा प्यारा राम ॥
दीन
है वह जो वन उत्तर की ओर
है वहाँ न मचता शं
बैठकर ध्यान ।
जीवन भर के
गाना गान ॥

मेरी माला ।

भाव-पुष्प को गूंथ गूंथ-कर
मैंने हार बनाया ।
साभिमान उसको लेकर
'मन्दिर में जाना चाहा ॥
मिले मित्र-जितने पथ में
उन सब को—उसे दिखाया ।
सब ने उसको अत्युत्तम
हां अत्युत्तम बतलाया ॥
धीरे धीरे मैं मन्दिर में
जा पहुंचा-इठलाता ।
बोला देख पुजारी मुझको
अरे ! कहां है आता ॥
मैंने कहा देव ! पूजा हित
लाया हूँ मैं माला ।
इसे पिन्हाऊंगा मैं उसको
जो है वंशी वाला ॥
उनने कहा अबूझ कभी
साहस मत ऐसा करना ।
गन्धहीन माला से उसकी
सुन्दरता मत हरना ॥

अभी और कुछ दिन घर रहकर
सीखो-हार बनाना
तब साहस करना माला ले
आना आदर पाना ॥
हो निराश-बाहर मैं आया
भूला घर का जाना ।
लगा सोचने क्यों आया जो
पड़ा हाय ! पछताना ॥
वहीं दूब पर बैठ लगा निज
मन्द भाग्य पर रोने ।
अश्रु-नीर से हृदय-भूमि के
दुःख-पंक को धोने ॥
रोते रोते निद्रा आयी
स्वप्न अनूठा—देखा ।
जिसकी पूजा कर न सका था
उसे निकट अवरेखा ॥
मधुर स्वरों में आश्वासन-दे
लेली उसने माला ।
उलट-पुलट कर पूर्ण-रूप से
उसको-देखा-भाला ॥

कहा "पुजारी के कटु वाक्यों"
से तुम खिन्न-न होना ।
उनकी टीका टिप्पणियों से
कभी न साहस खोना ॥
बहुधा छिद्रान्वेषण करना
उन्हे अधिक है आता ।
पक्षपात का पीला-चश्मा—
और गज़ब है ढाता ॥
किन्तु हमारा द्वार खुला
नित सब के हित रहता है ।
यहां द्वेष औ पक्षपात का
पवन नहीं बहता है ॥
श्रद्धा से जो कुछ अर्पण हो
वही मुझे है भाता ।
यहां भाव-देखा जाता है
भेष न देखा—जाता ॥

हृदय स्तल में ढूंढ

जग में फैला देखा मैंने नश्वरता का राज्य।
अतः निराश हुआ मैं उससे समझा उसको त्याज्य॥
चला जङ्गल में पाने शान्ति।
जहां सुनता था मिटती भ्रान्ति॥
मिले मार्ग में तपसी बाबा दिया उन्होंने ज्ञान।
बेटा बन में बैठ प्रेम से, जपो नाम भगवान्॥
करोगे इसी रीति से प्राप्त।
नाम है जिनका जगमें व्याप्त॥
मैंने कहा बतावें मुझको वह सुन्दर बन भाग।
जिसमें जा आरम्भ करूं मैं गुरुवर अपना याग॥
सफल हो जिससे मेरा काम।
प्राप्त हो मेरा प्यारा राम॥
बेटा! दीख रहा है वह जो बन उत्तर की ओर।
वहीं चला जा नीरवता है वहाँ न मचता शोर॥
लगाना वहीं बैठकर ध्यान।
ईश के यश का गाना गान॥
उनके चरण-कमल को छूकर ली जङ्गल की राह।
सोच रहा था देखूं कब तक मिटता अन्तर्दाह॥
रीझते हैं कब तक भगवान्।
श्रवण कर मेरा अटपट गान॥

पहुंच विपिन में श्रद्धा पूर्वक बैठा आसन मार।
जपमें लीन हुआ मैं अपना सारा सोच बिसार॥
विताये उसी भांति बहु मास।
न तौभी पूरी मेरी आश॥
अपनी असफलता पर मुझको हुआ बहुत ही शोक।
खिन्न हुआ बढ़ने की इच्छा को मैं सका न रोक॥
बढ़ाया पग आगे की ओर।
ढूंढ़ने को अपना चित चोर॥
अनति दूर जाने पर मैंने देखी अनुपम मूर्ति।
जिसको लखने से होती थी तन में खूब स्फूर्ति॥
झुकाया सादर अपना शीश।
पुकारा उनको कह कर ईश॥
मेरे मलिन वेश को लखकर कहा उन्हों ने तात।
आते हो तुम बहुत दूर से होता है यह ज्ञात॥
गवाही उसकी तेरी देह।
कहो छोड़ा क्यों तुमने गेह॥
नि.संकोच सुनाया मैंने अपना सारा हाल।
सुनकर अट्टहास कर उनने कहा यही तत्काल॥
व्यर्थ क्यों भटक रहा है मूढ़।
ढूंढ़ निज हृदयस्तलमें ढूंढ़॥

हृदय स्तल में ढूंढ

जग में फैला देखा मैंने नश्वरता का राज्य।
अतः निराश हुआ मैं उससे समझा उसको त्याज्य॥
चला जङ्गल में पाने शान्ति।
जहां सुनता था मिटती भ्रान्ति॥
मिले मार्ग में तपसी बाबा दिया उन्होंने ज्ञान।
बेटा बन में बैठ प्रेम से जपो नाम भगवान्॥
करोगे इसी रीति से प्राप्त।
नाम है जिनका जगमें व्याप्त॥
मैंने कहा बतावें मुझको वह सुन्दर वन भाग।
जिसमें जा आरम्भ करूं मैं गुरुवर अपना याग॥
सफल हो जिससे मेरा काम।
प्राप्त हो मेरा प्यारा राम॥
बेटा! दीख रहा है वह जो वन उत्तर की ओर।
वहीं चला जा नीरवता है वहाँ न मचता शोर॥
लगाना वहीं बैठकर ध्यान।
ईश के यश का गाना गान॥
उनके चरण-कमल को छूकर ली जङ्गल की राह।
सोच रहा था देखूं कब तक मिटता अन्तर्दाह॥
रीझते हैं कब तक भगवान्।
श्रवण कर मेरा अटपट गान॥

पहुंच विपिन में श्रद्धा पूर्वक बैठा आसन मार ।
जपमें लीन हुआ मैं अपना सारा सोच विसार ॥
बिताये उसी भांति बहु मास ।
न तौभी पूरी मेरी आश ॥
अपनी असफलता पर मुझको हुआ बहुत ही शोक ।
खिन्न हुआ बढ़ने की इच्छा को मैं सका न रोक ॥
बढ़ाया पग आगे की ओर ।
ढूंढ़ने को अपना चित चोर ॥
अनति दूर जाने पर मैंने देखी अनुपम मूर्ति ।
जिसको लखने से होती थी तन में खूब स्फूर्ति ॥
झुकाया सादर अपना शीश ।
पुकारा उनको कह कर ईश ॥
मेरे मलिन वेश को लखकर कहा उन्हों ने तात ।
आते हो तुम बहुत दूर से होता है यह ज्ञात ॥
गवाही उसकी तेरी देह ।
कहो छोड़ा क्यों तुमने गेह ॥
नि.संकोच सुनाया मैंने अपना सारा हाल ।
सुनकर अट्टहास कर उनने कहा यही तत्काल ॥
व्यर्थ क्यों भटक रहा है मूढ़ ।
ढूंढ़ निज हृदयस्तलमें ढूंढ़ ॥

॥ बालक की अभिलाषा ॥

भगवन् ! मुझे स्वदेश-प्रेम का
प्यारा पाठ पढ़ा देना ।
मेरे मस्तक पर स्वधर्म का
गाढ़ा रंग चढ़ा देना ॥
हिन्दू-पति राणा प्रताप का
मंत्र मुझे कृपया देना ।
दिल में मेरे अन्य धर्म
वालों के लिये दया देना ॥
दो ऐसा उत्साह कि आत्माहुति
से भी कुछ भी न डरूं ।
हंसते हंसते जाति धर्म पर
अर्पित अपना शीश करूं ॥

हमारी साहित्यिक पुस्तकें

अनुभूति

[रचयिता—प० जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', एम० ए०]

हिन्दी के अभिनव काव्य-जगत को उज्वल करने वाली इस अनुपम कविता पुस्तक के सम्बन्ध में इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि इसमें द्विज जी की वेही कोमल-करुण कवितायें संगृहीत हैं जिन्हें एक वार पढ़कर आप बार-बार पढ़ना चाहेंगे, जिनकी मादकता आप के जीवन को माधुर्य्य से ओत-प्रोत कर देगी। मानव-हृदय को भाव-मग्न कर देने वाली यह पुस्तक अपनी वाहरी सुंदरता में भी बेजोड़ है और इसका दाम भी है केवल डेढ़ रुपया।

मीरा की प्रेम-साधना।

[लेखक—पं० भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव', एम० ए०]

इसके लेखक उच्च कोटि के एक भावुक कवि और हिन्दी तथा अंगरेजी-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान हैं। मीरा की प्रेम-भावना का इतना वढ़ियां विश्लेषण आजतक किसी ने नहीं किया। अपने विषय को यह एक अपूर्व पुस्तक है। इसमें मीरा के पद भी जोड़ दिये गये हैं। गेट-अप फर्स्ट क्लास। दाम १॥)

प्रेमचन्द की उपन्यास-कला।

[लेखक—पं० जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', एम० ए०]

इस पुस्तक में द्विजजी ने औपन्यासिक सम्राट श्री प्रेम-चन्दजी की उपन्यास-कला के विभिन्न तत्वों का इतना वढ़ियां विश्लेषण किया है कि पढ़कर चित्त प्रसन्न हो जाता है इस विषय की वह पहली पुस्तक है। दाम केवल डेढ़ रुपया। गेट-अप फर्स्ट क्लास।

ज्योतिर्मयी

(उपन्यास)

[लेखक— साहित्यरत्न श्री अनूपलाल मण्डल]

यह सामाजिक उपन्यास पढ़कर आप आनन्द-गद् गद् हो उठेंगे। मण्डलजी की अबतक जितनी सुन्दर २ पुस्तकें निकल चुकी हैं, उनमें इस नई कृति का स्थान सर्वोच्च है। कथानक, चरित्र-चित्रण, भाषा, भाव सभी बातें अत्यन्त मनोहर हैं। गेट-अप भी बहुत बढ़िया है और दाम २) रु०।

चित्र-कथा

[लेखक—प्रो० कन्हैयाप्रसाद सिंह, एम० ए०]

यह एक इतनी बढ़ियां कहानी-पुस्तक है कि इसे पढ़कर आप मुग्ध हो जायंगे। लेखक की सहृदयता और मर्मज्ञता प्रत्येक कहानी में कूट २ भरी हुई है। भाषा और भाव दोनों ही सुन्दर हैं। गेट-अप भी बहुत बढ़िया है और दाम है केवल सवा रुपया।

तलवार की धार पर

(लेखक—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी)

यदि आप अपने बच्चों को वीर बनाना चाहते हैं तो इस पुस्तक की एक प्रति शीघ्र खरीद लीजिए। मूल्य आठ आना।

फलों का गुच्छा

(लेखक—श्री बेनीपुरी)

इस पुस्तक से लड़कों को मनोरंजन के साथ ही साथ सुन्दर सदुपदेश प्राप्त होगा जो उन के जीवन पथ में आगे चलकर बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। मूल्य ॥)

पता—व्यवस्थापक, वाणी-मन्दिर, छपरा।

प्रकाशक
वाणी-मन्दिर, छपरा ।